—प्राप्ति स्थान—

१. श्री अखिल भारतीय साधुमार्गी जैन संस्कृति रक्षक संघ
सैलाना (मध्य प्रदेश)

☆

शाखा—श्री अ. भा. साधुमार्गी जैन संस्कृति रक्षक संघ

☆

२ " २३४ नागदेवी स्ट्रीट बम्बई न. ३

☆

३ " सराफा बाजार जोधपुर (राजस्थान)

☆

४ " सदर बाजार, रायपुर (मध्य-प्रदेश)

Printed at
Shree Jain Printing Press Sailana (M P)

अनागत की झांकी—

स्त्री प्रधान धर्म

लेखक—

रतनलाल डोशी सैलाना

द्रव्य सहायक—

श्रीमान् सेठ मोहनलालजी आछादानजी [illegible]

सोलापुर (महाराष्ट्र)

प्रकाशक—

अ० भा० साधुमार्गी जैन संस्कृति रक्षक संघ

सैलाना (मध्य प्रदेश)

वीर सम्वत् २४८८ ☆ विक्रम सम्वत् २०१८ ☆ ई० सन् १९६२

मूल्य पच्चीस नए पैसे

अपनी ओर से

"स्त्री प्रधान धर्म" शीर्षक लेखमाला 'सम्यग्दर्शन' के अप्रल १६५५ से फरवरी १६५६ तक के अंकों में लगातार छपती रही। इस लेखमाला की सृष्टि सकारण ही हुई है। श्रमण संघ का गठन व्यवस्था पद एवं चुनाव प्रथा ने साध्वियों के प्रतिनिधित्व का प्रश्न भी खड़ा कर दिया। मेरी जानकारी के अनुसार इस प्रश्न का जन्म पुरुषों की ओर से ही हुआ। कम से कम धर्म क्षेत्र में तो यह प्रश्न साधकों की ओर से ही उठा है। नवपठित लौकिक साहित्य के रसिकों ने इस प्रश्न को उठाया। प्रचारित किया। भाषा समिति के विवेक को छोड़कर और स्त्रियों के पक्षकार बनकर, उग्रता पूर्वक कलम चलाई गई। इसका कुप्रभाव कुछ साध्वियों पर भी पड़ा। विदुषी साध्वियों के लेख भी छपने लग ॐ। और संघ ऐक्य समिति के संयोजक श्रीमान धीरजलालजी तुरखियाजी ने एक परिपत्र में साध्वी वर्ग को प्रोत्साहन देते हुए यहाँ तक लिखा कि—

अपने हक और अधिकार का भान भी विकास का चिन्ह है। (जनप्रकाश १७ ३ ५८ पृ २६७)

उपरोक्त शब्दों में 'विकार' को 'विकास' बतलाया गया।

श्रमण संघ के तत्कालीन प्रधानमन्त्री मुनिराज श्री ने भी अवसर देख कर निम्न उद्गार व्यक्त कर दिये।

'कतिपय विदुषी साध्वियां ने साधुसम्मेलन में अपने प्रतिनिधित्व की भावना व्यक्त की है। उन विदुषी सतियां की

ॐ देखें— जैनप्रकाश १३ १ ५५ में प्रकाशित श्री नानुकुँवरजी म का 'क्या जैन संस्कृति स्त्री प्रधान नहीं है' और इसके दूसरे कालम में छपा श्री इन्द्राकुमारीजी म का लेख आदि।

आगे आकर साध्वी संगठन और विचार एकता के लिए प्रयत्न करना चाहिये। जिससे साध्वी सम्मेलन होकर संगठन किया जा सके तथा प्रतिनिधित्व पाने में सुभीता रहे।"

("जैनप्रकाश' १०-२ ५५ प १८६)

इसके विरोध में सहमन्त्री पूज्य श्री हस्तीमलजी म के विचार संक्षप में 'जैन प्रकाश' १७-३ ५५ में व्यक्त हुए तो 'श्री नवीनकुमारजी × ने उनका विरोध किया और शास्त्रों का दुरुपयोग भी किया।

ऐसे ही समय यह लेखमाला छपी थी। उस समय इसका प्रकाशित होना आवश्यक भी था। आगमिक एवं उत्तम परम्परा के पक्ष में यथावसर प्रचार करना हितकर होता है। इससे विचारक वर्ग को सोचने समझने का निमित्त उपस्थित होता है।

यह लेखमाला और इसके पात्र कल्पित ही है। फिरभी यह कल्पना अनहोनी नहीं है। यदि साधु सम्मेलन प्रगति करता और प्रधान मन्त्रीजी म सा के अभिप्रायानुसार साध्वी संगठन होकर प्रतिनिधित्व पा जाता तो अनागत वर्तमान बन जाता इसमें सन्देह ही क्या है? प्रतिनिधित्व देने की बात तो श्रमण संघ के प्रधान मन्त्रीजी म सा ने स्वीकार कर ही ली थी और संघ एक्य समिति के संयोजकजी ने 'अधिकार की माँग को 'विकास का चिह्न' बता ही दिया था। इस प्रकार सद्धान्तिक तथा पारम्परिक प्रणाली को मिटाकर भौतिक राजनैतिक सिद्धान्त को अपनाने की तत्परता बताई जा चुकी थी। यदि ये विचार प्रगति करके कार्य रूप में आ जाते तो श्रमणसंघ के प्रतिनिधियों

× हमारा विश्वास है कि ये नवीनकुमारजी भी कोई साधु ही है। दूसरे नाम से लेख छपवा कर मायाचारिता का पाप भी कई साधु करने लग गये है।

की सख्या घट जाती (क्यों कि कई प्रतिनिधि मुनिवर साध्वियों को सख्या के बल पर प्रतिनिधि बने है) और साध्वियों की सख्या बढ़ जाती (क्यों कि सख्या में वे अधिक ही है) जब साध्वियों की सख्या अधिक होती तो आचार्य का पद पुरुष-साधु के पास कब तक रह सकता ? इस प्रकार पतन का मार्ग खुल ही जाता ।

प्रस्तुत पुस्तक में उसी सभावना को प्रत्यक्ष का कल्पित रूप दिया गया है । यह कहानी कल्पित होते हुए भी शास्त्रीय आधार और युक्ति युक्त है । इसके विपरीत न तो कोई शास्त्रीय आधार उपस्थित हुआ, न कोई युक्ति ही सामने आई । किन्तु आया हुआ तूफान तत्काल तो ठडा हो गया । बात आई गई हो गई । इस विषय में यदि कभी कोई प्रश्न उपस्थित हो, तो यह पुस्तक उपयोगी हो सकती है ।

यह लेखमाला आगम और परम्परा में श्रद्धा रखने वाले महानुभावों को पसंद भी आई थी । कुछ घाटी के मुनिवरों के भी प्रमोद भाव व्यक्त हुए थे । इसे पुस्तक रूप में प्रचारित करने की माँग भी हुई थी, किन्तु वह टलती रही ।

श्रीमान सेठ मोहनलालजी प्राइदानजी लुनावत नोलापुर निवासी का आग्रह हुआ । उन्हीं के खर्चे से यह पुस्तक प्रकाशित हो रही है । इसकी बिकरी से जो आवक होगी, वह सघ के साहित्य प्रचार खाते में जमा होगी ।

यह पुस्तक वस्तु स्वरूप को बताने, भ्रम का निवारण करने और आगमिक उत्तम परम्परा को यथावत् बनाये रखने के उद्देश्य से प्रकाशित की जा रही है । आशा है कि इसका सदुपयोग ही होगा ।

सघ का प्रत्येक प्रकाशन जैन संस्कृति के प्रचार एव रक्षण के लिए होता है और आगे भी होता रहेगा ।

रतनलाल डोशी

अनागत की झाकी--

स्त्री प्रधान धर्म

आजाद नगर के विशाल जन उपाश्रय में साध्वी सम्मेलन की तय्यारियाँ हो चुकी है। सकड़ो साध्वियाँ भिन्न भिन्न क्षेत्रो से आकर एकत्रित हुई है। व्याख्यान हाल में सम्मेलन की कारवाई हो रही है। साध्वियों के अतिरिक्त केवल दो श्राविका बहिन भी उपस्थित है। एक है, मुम्बई की चञ्चला बहिन तथा दूसरी दिल्ली की चपला बहिन। दोनों के अथक परिश्रम से ही यह साध्वी-सम्मेलन हो सका है। इन दोनो बहिनो को कुछ युवक श्रावको और साधुओं का पीठबल प्राप्त था किन्तु व तो मार्गदर्शन कराकर अलग ही रहने वाले थे। सम्मेलन की कारवाई प्रारम्भ करने के पूर्व एक सतीजी ने सभाध्यक्ष के पद के लिए स्थविरपद विभूषिता प्रवर्तनी महासती श्रीसुव्रताजी' का नाम प्रस्ताव के रूप में उपस्थित किया।

महासतीजी का नाम सुनते ही कार्यकर्त्री मतिएँ चौंक उठी और देखने लगी कि किसने यह नाम प्रस्तावित कर दिया। श्री सुव्रता महासतीजी रूढ़िचुस्त के रूप में प्रख्यात थी। उनका नाम प्रस्तावित होते ही महासतीजी धीरे धीरे उठी और कहने लगी–

"सतीवृन्द ! इस सभा के प्रमुख पद के लिए मेरा नाम लिया गया, किन्तु मैं वृद्धा हूँ। दूसरा मैं परम्परा की पुजारिन हूँ। आपकी बहुतसी कारवाई मुझे अच्छी नहीं लगती। मेरा स्थिरवास इसी क्षेत्र में होने से और हो सके, तो अवसर पर हित के दो शब्द कहने के लिए अपना ज्ञान ध्यान छोड़कर यहाँ आ गई हूँ। मुझे ऐसी सभा का प्रमुख पद नहीं चाहिए। इसलिए आप अपनी सभा का भार किसी अन्य को सौंपें।"

श्रीविद्युन्मतीजी–"हाँ, हाँ, आपका फरमाना ठीक है। आप वृद्धा होने से आपसे इतना परिश्रम नहीं हो सकेगा और यह कार्य शारीरिक शक्ति की भी अपेक्षा रखता है। इसलिए इस पद के लिए मैं परम पंडिता विदुषी श्रीमती कीर्तिकुमारीजी महासती का नाम प्रस्तुत करती हूँ। आपमें अद्भुत कार्य कुशलता है। सभा सञ्चालन में आप प्रवीण हैं। आपने श्रमण सम्मेलन की कारवाई भी देखी और खास बात यह है कि आप परम्परा से चली आती हुई सड़ी-गली और जर्जर बनी हुई पुरुष-प्रधान धर्म की प्रणालिका की घोर विरोधिनी हैं। इस दूषित प्रणालिका को छिन्न भिन्न करके आप 'स्त्री प्रधान'

धर्म का युगानुरूप नई स्थापना करने को लालायित है। आपके नेतृत्व में हम अवश्य ही सफल होंगी। आशा है कि मेरे इस प्रस्ताव का एक स्वर से समर्थन होगा।'

सती श्रीद्रौपदीजी—'श्री विद्युतमतीजी के प्रस्ताव का मैं समर्थन करती हूं। आपकी कार्यकुशलता सर्वविदित है। आज की इस सभा का अधिकांश श्रेय भी आप ही को है। इसलिए सम्माननीय पद आपको ही देना चाहिए।"

सती श्री कुन्ताजी—"इस सभा का सञ्चालन सशक्त और कुशल हाथों में ही सौंपना चाहिये। जीर्ण शीर्ण हाथों में सौंपने से सभा का उद्देश्य सफल नहीं हो सकेगा। सती विद्युत्मतीजी का प्रस्ताव सर्वथा उचित और स्वीकार करने योग्य है। मैं इसका हार्दिक अनुमोदन करती हूं।"

इस प्रकार सभा की अध्यक्षता विदुषी सती श्री कीर्ति कुमारीजी को निर्विरोध सौंपी गई। कीर्तिकुमारीजी ने उच्चासन ग्रहण किया। आपकी उम्र ३० से अधिक नहीं होगी। हंस के समान श्वेत वस्त्रों में आपका शरीर शोभायमान था। सुन्दर फ्रेम से मढ़ा हुआ ऐनक आपके चेहरे की दीप्ति बढ़ा रहा था। पारकर का फाउन्टेनपेन आपके हाथ में खेल रहा था। आपने अपना रजोहरण एक ओर रखकर और कुछ कदम आगे [illegible] भाषण देना प्रारम्भ किया।

- उपस्थित महासती वृन्द! आपने मेरे [illegible] पर यह गुरुतर भार' इस प्रकार [illegible]

के अनुसार कुछ शब्द कहने के पश्चात अपनी विद्रोहभरी वाणी में कहने लगी—

"पुरुष वर्ग ने हम पर जुल्म किये। पचास वर्ष की दीक्षा वृद्ध, ज्ञान वृद्ध, अनुभव वृद्ध और वयोवृद्ध साध्वी भी एक दिन के—दीक्षाहीन के चरणों में सिर झुकावे, उसे उठ बैठ कर वंदन करे उसकी आज्ञा में रहे। यह अत्याचार क्या कम है ? साध्वी कितनी ही योग्य और चारित्र पात्र हो तो उसे आचार्य पद नहीं मिल सकता किन्तु उससे कम योग्यता वाले साधु को वह पद खुशी-खुशी अर्पण किया जाता है। तीर्थङ्कर के समवसरण में हम स्त्री जाति को बैठने का अधिकार भी नहीं। यह अत्याचार क्या भूलने योग्य है ? अपने लिए तो पुरुषों ने कई विशेष अधिकार सुरक्षित रख लिए परन्तु नारी जाति को उनसे सर्वथा वञ्चित कर दिया। स्त्री, न गृहस्वामिनी बन सकती है, न राज राजेश्वरी। वासुदेव और चक्रवर्ती के पद से भी वह सर्वथा वञ्चित कर दी गई। वह मोक्ष तो पा सकती है किन्तु तीर्थङ्कर पद के लिए वह सर्वथा अयोग्य बना दी गई है। हम मातृ जाति ने पुरुष वर्ग को पाला पोसा और योग्य बनाया। इसका बदला हमें यही मिला कि हम मात्र भरण—पोषण की ही अधिकारिणी है। मालिकाना हक से तो हम सर्वथा वञ्चित ही रहेंगी ?

बहिनो ! भगवती मल्लीकुमारी का आदर्श अपनाओ। उन्होंने परम्परागत पुरुषाधिकार को चुनौती देकर सारी सत्ता

में भी महिलाओं ने अपने अधिकार प्राप्त कर लिये हैं और कर रही हैं। राज राजेश्वरी राष्ट्रनायिका, मन्त्री, न्यायाधिकारिणी आदि महत्वपूर्ण पदों पर नारी जाति के अधिकार होते हा जा रहे हैं। इस समय पुरुष वर्ग भी हमारा सहायक हो रहा है। धार्मिक पक्ष में श्रद्धेय मुनि श्री सुन्तवालजी ने वर्षों पूर्व हमारे अधिकारों की स्वीकृति दे दी है और अब तो श्रमण संघ के कई मुनिवर हमारे सहायक हैं। कुछ रूढ़ि-चुस्त वर्ग को हमारी बातें नहीं रुचती हैं। किन्तु वे हमारी सफलता को रोक भी नहीं सकेंगे। क्योंकि उनकी शक्ति क्षीण हो गई है। उन्हें हमारी सत्ता माननी ही पड़ेगी। सद्भाग्य से श्रमण संघ ने चुनाव पद्धति स्वीकार कर ली है और संघ के श्री प्रधानमन्त्रीजी म० ने हमें प्रतिनिधित्व देना स्वीकार भी किया है। हमारा मार्ग बहुत ही सरल हो गया है। बिना अधिक समय के ही हम अपना ध्येय सिद्ध कर लेंगी।

सभानेत्रीजी का भाषण समाप्त होते ही चचला व चपला बहिन ने तालियाँ बजाकर हर्ष प्रकट किया और उनका अनुकरण उपस्थित साध्वी वर्ग में से भी कुछ ने किया। अध्यक्षा के आसनासीन होते ही महासती सुव्रताजी सभा में से उठकर जाने लगी। तब अध्यक्षा श्री कान्तिकुमारीजी ने पूछा— "आप सभा छोड़कर क्यों जा रही हैं?"

इस सभा की कारवाई ध्येय के प्रतिकूल है। जिन्हें अपने त्याग के उद्देश्य का परवाह है, उन्हें इस सभा को

कारस्वाई में शामिल नहीं रहना चाहिए। इसलिए म तो जा रहा हू।

महासती सुव्रताजी के चारित्र और ज्ञान का प्रभाव वर्षों स जमा हुआ था। उनकी सरलता, अनुभव विशालता और सयम की निर्दोष भावना सर्वत्र प्रशसा पा रही थी। अनेक मुनिगण भी उनके ज्ञान और अनुभव स लाभ उठाते थे। यदि महासतीजी सभा में नहा आती ता विशष हानि नहीं था, कि तु उनके सभा छोडकर चली जाने म बुरा प्रभाव पडने की सम्भावना था। कीर्तिकुमारीजी इस बात का जानती थी। उन्होंने व्यवहार कुशलता अपनाते हुए कहा—

'आप यहीं बिराजें हम सब मिलकर और जहा तक होगा सब सम्मति स हा काम करेंगी। आपके ज्ञानानुभव की हमें आवश्यकता ह। हम जा कुछ करेंगा वह साच समझ कर और आपस में चर्चा करक हा करेंगी। आप बिराजिए और मेरे पास हा बिराजिय।'

'नही, मैं यहीं बठती हू, किन्तु मुझे आपक उद्देश्य और काय के प्रति शका ह। इसलिए इनके समाधान क बिना ही मेरा शरीक रहना व्यर्थ होगा।" म० सुव्रताजी ने कहा।

'हमारा उद्देश्य ता महान ह। हम स्त्री जाति के कलङ्क का मिटाना चाहता ह और पुरुष क बराबरी का स्थान—जो हमारा जन्मसिद्ध अधिकार ह, प्राप्त करना चाहता ह।' इस प्रकार हमारा उद्देश्य पवित्र ह। इसमें किसी को कोई शका

नही रहना चाहिये।" श्री कान्तिकुमारीजा ने अपने आदोलन की निर्दोषता बताते हुए कहा।

'जिसको आप पवित्र और निर्दोष कहती हैं वही मेरी दृष्टि में मलीन एव दोष पूर्ण ह। और ह पतन के गड्ढे में गिराने वाला। जरा तटस्थता पूर्वक विचार कर"—महासतीजी ने धीर गम्भीर वाणी में कहा।

हमारा उद्देश्य किस प्रकार दूषित ह"—मभानेत्राजी ने प्रश्न किया।

"जब स हमन ससार छोडकर निग्रन्थ जावन स्वीकार किया तब से हमन अपने सभी अधिकार और हक छोड दिये और केवल एक ही अधिकार प्राप्त करने क लिए अपनी शक्ति भर प्रयत्न करना प्रारम्भ किया। वह एक मात्र अधिकार 'मोक्ष प्राप्ति" का ह—जहा दुनिया क सभी भौतिक अधिकार नष्ट होकर सभी सिद्ध, समान रूप में रहते हैं। हम दीक्षित हुई 'मोक्ष साधना क उद्दश्य स।" इस उद्देश्य का साधने के लिये हा हमने घर छोडा कुटुम्ब छोडा सुख सुविधा और धन दौलत छोडी। यह सब आत्मिक पूर्णता—स्वतन्त्रता पाने के लिए। किन्तु आपका यह आन्दोलन हमें अपन पवित्र उद्देश्य से गिरा कर दुनयवी हक क झगड में फँसाता ह। कषायों का तीव्र बनाता ह और ऐसी स्थिति उत्पन्न कर देता ह कि जिसस निग्रन्थी कहलाने का हक ही नहीं रहता, हमें सग्रन्थी बना देता ह।'

'युग नहीं माने, प्रभी आपके भाषण में विशेषकर कषायात्मा के ही दर्शन होते थे । भौतिक अधिकारों की प्राप्ति के लिए इस प्रकार के प्रयत्न, श्रमण जीवन में कलङ्क रूप हैं। इस पर शान्ति से विचार करें"–वृद्धावस्था के कारण महासतीजी को बोलने में कष्ट हो रहा था । कुछ देर श्वास लेकर पुनः मधुर वाणी प्रवाहित हुई– 'सर्वज्ञ भगवान् की वाणी पर भी कुछ ध्यान देना चाहिए । हमें सर्वदा यह स्मृति में रखना चाहिए कि हमसे ऐसी कोई प्रवृत्ति नहीं हो जाय, जिससे ज्ञानियों के वचनों का उल्लंघन हो । संसार की आत्माएँ आत्म दृष्टि से समान हैं । त्रस और स्थावर सूक्ष्म और बादर, सिद्ध और संसारी, सभी आत्मा, आत्म रूप से समान हैं, किन्तु पर्यायों–भौतिक अवस्थाओं एवं परिस्थितियों के कारण सब में भेद रहा हुआ है । इसी प्रकार स्त्री और पुरुष में भी भेद होना शास्त्र सम्मत है ।"

'क्या स्त्री पुरुष में भेद होना शास्त्र सम्मत है'–श्री कीर्तिकुमारीजी ने पूछा ।

हाँ शास्त्र सम्मत है और इससे सिद्ध होता है कि स्त्री और पुरुष में प्रधानता पुरुष की है । पुरुष पर्याय के बनिस्बत स्त्री पर्याय अमुक अपेक्षा से नीची श्रेणी में है ।'

"अजी, आप क्या फरमाती हैं ? शास्त्र में तो पुरुष की अपेक्षा स्त्री का स्थान महत्वपूर्ण बतलाया है। क्या आपको मालूम नहीं –श्री कान्तिकुमारीजी ने कहा ।

'किस प्रकार महत्वपूर्ण है ? आप बताइये तो ।"

"हाँ देखिए —श्री कार्तिकुमारीजी अपना पक्ष प्रमाणित करने के लिये शास्त्रीय दलील पेश करने लगी । 'इस अवसर्पिणी काल के पूर्व से ही हमारा यह क्षेत्र 'भोग भूमि' के रूप में था । उस समय मोक्ष जाना सर्वथा बन्द हो चुका था । पूर्व के काल चक्र में किसी मनहूस पुरुष ने मोक्ष में जाने का मार्ग सर्वथा बन्द कर दिया था । जो अरबों खरबों सागरोपम प्रमाण काल तक बन्द ही रहा । उस अवरुद्ध मोक्ष मार्ग को सबसे पहले श्री भगवती मरुदेवा' ने खोला, तभी जीव मोक्ष जाने लगे । यदि उस महासती ने ऐसा महाकृपा नहीं की होती, तो क्या ? भगवान् ऋषभदेवादि मोक्ष पा सकते थे ? और देखिये, फिर पुरुष (श्री जम्बूस्वामी) ने ही मोक्ष का जाना एकदम बन्द कर दिया । स्त्री मोक्ष मार्ग खोलती है और पुरुष बन्द कर देता है । तब पुरुष की अपेक्षा स्त्री का स्थान महत्व पूर्ण रहा या नहीं '

उपरोक्त दलील सुनकर महास्थविरा महासती ने मुस्कराते हुए कहा—

सतीजी ! आपकी बात है तो शास्त्रीय किन्तु दलील गलत है । इस बात से इतना ही सिद्ध हो सकता है कि इस अवसर्पिणी काल में भरत क्षेत्र से सबसे प्रथम मरुदेवी माता मोक्ष पधारी और सबसे बाद में श्री जम्बूस्वामीजी म० । किन्तु यह नहीं सिद्ध होता कि मरुदेवा माता ने मार्ग का उद्घाटन

(चालू) किया और जम्बूस्वामीजी ने बन्द किया। उस समय द्रव्य क्षेत्रादि अनुकूल नहीं थे, इसलिये यहां से कोई सिद्ध नहीं हो सके और श्री जम्बूस्वामी के बाद भी ऐसी अनुकूलता नहीं रही। संसार में जो यह कहा जाता है कि मोक्ष जाने का रास्ता श्री मरुदेवीमाता ने खोला और जम्बूस्वामीजी ने बन्द किया"—यह केवल लोक व्यवहारानुसार है। वास्तविक बात तो यह है कि कोई भी व्यक्ति किसी मार्ग जाते हुए को रोक नहीं सकता, न कोई किसी को जबरन मार्ग में पहुँचा ही सकता है। ऐसी शक्ति किसी में भी नहीं है। मोक्ष मार्ग तो सदैव खुला रहता है, यदि विरह पड़ता है तो उत्कृष्ट के माह का ही। जो मोक्ष जाते हैं, वे अपने द्रव्यादि की अनुकूलता से ही जाते हैं। अतएव आपकी यह युक्ति उपयुक्त नहीं है।

'और देखिए'—इस युक्ति को निष्फल होते देखकर धर्मकीर्तिकुमारजी ने दूसरी युक्ति उपस्थित की— विश्व में सबसे महत्व पूर्ण" तीर्थङ्कर' का है। ऐसे तीर्थङ्कर जैसे लोकोत्तम लोकनाथ को उत्पन्न करने का श्रेय स्त्री को ही प्राप्त हुआ है और इसीसे वह रत्नकुक्ष धारिणी कहलाई। क्या किसी पुरुष को यह सामान्य प्राप्त हुआ या हो सकता है? जन्मोत्सव करने को इन्द्र यहाँ आते हैं तब उन रत्नकुक्षि को धारण करने वाली माता को नमस्कार करते हैं—पिता को नहीं। क्या यह बात महत्वपूर्ण नहीं है?'

"इसका समाधान तो बिलकुल सरल है'—हँसते हुए

महासती सुव्रताजी ने फरमाया—' कुक्षि की धारिणी—गर्भ धारण करने वाली, स्त्री होती है। वह रत्न स्वरूप द्रव्य तीर्थङ्कर को अपनी कुक्षि में धारण करती है। इसलिए रत्नकुक्षि का धारण करने वाली कही जाती है, और उस रत्न को धारण करने के कारण ही वह देवेन्द्र से सत्कार पाती है। यह महत्व तो उस रत्न का ही है। देवेन्द्र से सत्कार पाने वाली रत्नकुक्ष धारिणी, अपने पति को नमन करती है। अपने को उनसे हेठी मानती है। इतना ही नहीं, जिस रत्न के कारण वह 'रत्नकुक्षधारिणी' कहलाई वह रत्न भी पिता के चरण वन्दन करता है। अत धार्मिक दृष्टि से यह कोई विशेष बात नहीं है।"

"इन्द्र इन्द्रानी और तीर्थङ्कर के माता पिता भी एक सामान्य साधु के चरणों में अपना सिर झुकाते हैं। क्योंकि वह धार्मिक दृष्टि से उन सब से ऊँचा—छठे गुणस्थान पर है, और वे सब चौथे पाँचवें गुणस्थान पर हैं। वहाँ भौतिक पद का तो महत्व ही नहीं है। "रत्नकुक्षधारिणी '—यह भौतिक पद है। इससे न तो उसकी मुक्ति होती है, न गुणस्थान ही बढ़ता है।"

'एक भूमि में रत्न उत्पन्न होते हैं, दूसरी में पत्थर। भूमि का अधिक मूल्य रत्न के कारण है। यदि उसमें से रत्न निकलना बन्द हो जाय, तो उसका भी कोई मूल्य नहीं रहता। यह सब भौतिक दृष्टि है। यह ठीक है कि तीर्थङ्कर जिसकी कुक्षि में जन्म ले, वह माता दूसरी साधारण माताओं जैसी नहीं होती, बल्कि कई विशेषताओं से युक्त होती है। उसका मानस भी

साधारण नहीं होता (वस तीर्थङ्कर के बिना भी साधारण मानव जन्म नहीं होता) फिर भी उनके प्रत्याख्यानावरण चौक का उदय तो है ही । वे एक छोटे साधु की बराबरी भी नहीं कर सकते ।"

'इन्द्र सभी साधुओं साध्वियों को नमते हैं, प्रशंसा करते हैं और सम्यग्दृष्टि तथा देश विरती की भी प्रशंसा करते हैं । वे यदि तीर्थङ्कर की माता को नमते हैं तो तीर्थङ्कर जैसे भावी जगतवंद्य महापुरुष को जन्म देने में कारण ही । अर्थात् तीर्थ-ङ्कर की जन्मदात्री होने के कारण वह सत्कार पा सकी । इसमें महत्ता तीर्थङ्कर की है । यदि स्त्री होने के नाते सत्कार पाती, तो इसके पूर्व भी सत्कार होना था ।"

"धार्मिक दृष्टि से तीर्थङ्कर या किसी भी पुत्र पुत्री को जन्म देना, महत्वपूर्ण कार्य नहीं है क्योंकि यह मोहोदय का कार्य है । वेदोदय के कारण मैथुन होता है और उसके परिणाम स्वरूप गर्भ धारण होकर पुत्रोत्पत्ति होती है । धार्मिक दृष्टि से इसकी सराहना नहीं की जा सकती । अतएव आपका यह तर्क समुचित नहीं है ।"

'क्या तीर्थङ्कर जैसे विश्ववंद्य लोकोत्तम पुरुषश्रेष्ठ को जन्म देकर भी स्त्री सर्वोच्च स्थान नहीं पा सकी"-श्रीकीर्ति-कुमारीजी का प्रश्न ।"

-'सुनाजी ! यह कोई आश्चर्य की बात नहीं'-महा-स्थविराजी समझाने लगी-' तीर्थङ्कर को कोई बनाता नहीं, वे

स्वयं बनते हैं। उनकी आत्मा में शुभात्तम भावों के उच्चतम रस से, उत्कृष्ट पुण्यप्रकृति का बंध होता है। जब वह बंध निकाचित होकर उदय के सम्मुख होता है, तब वह आत्मा मनुष्य जन्म पाती है। इस प्रकार अपने श्रेष्ठ गुणों के अभ्युदय से ही वे उत्तम कुल और श्रेष्ठ माता पिता के यहां जन्म लेते हैं। किसी माता या पिता की यह शक्ति नहीं कि वे तीर्थङ्कर का निर्माण कर सकें। तीर्थङ्कर नाम कर्म, प्रथम संघयण, प्रथम संस्थान, अतिशय, ये सब उनकी अपनी ही करणी का फल है। वे अपने पूर्वभव का अवधिज्ञान साथ लेकर आते हैं। यह सब विशेषताएँ उनकी अपनी ही होती है, माता या पिता की बनाई हुई नहीं होती। माता गर्भ धारण करती है। उसमें जन्म होता है। तीर्थङ्कर के माता पिता अन्य साधारण स्त्री पुरुषों से उच्च स्थिति के होते हैं किन्तु वे तीर्थङ्कर का निर्माण कर सकें—ऐसी शक्ति उनकी नहीं है।

कान्तिकुमाराजा— शास्त्रों में तो स्त्री पुरुष का भेद ही नहीं माना है। एक पञ्चेन्द्रिय जाति और मनुष्य गति में ही सबकी गणना की गई है। फिर आप स्त्री पुरुष में भेद कैसे बताती हैं?"

महास्थविराजी—पञ्चेन्द्रिय जाति में तो मनुष्य ही क्या देव नारक और तिर्यञ्च भी होते हैं। मनुष्य गति में भी कर्मभूमिज, अकर्मभूमिज, संज्ञी, असंज्ञी, आर्य, अनार्य गृहस्थ साधु आदि भेद हैं। स्त्री, पुरुष और नपुंसक के भेद भी हैं।

मैने आपको पहले बताया कि आत्म द्रव्य की दृष्टि से सभी समान हैं, किन्तु पर्याय की अपेक्षा भेद शास्त्रों ने माना ही है और यह प्रत्यक्ष सिद्ध है।

"अच्छा और बातों को जाने दीजिए, अपने यही देखें कि पुरुष से स्त्री किस बात में कम है जो उसको समानता से वंचित रखा जाता है। क्या स्त्री व्यवस्था नहीं कर सकती। वह न्याय नहीं कर सकती। वह युद्ध में अपना पराक्रम नहीं दिखा सकती? वह किस बात में पुरुष से पीछे रह सकती है?" श्री कान्तिकुमारीजी का प्रश्न।

'मेरा तो यह कहना है कि तप या दूसरे धार्मिक कार्यों में जितनी बाह्य अनुकूलता पुरुषों को होती है उतनी स्त्रियों को नहीं। अपने पहले शास्त्रीय दृष्टि से ही विचार करें। फिर दूसरी दृष्टि से सोचेंगे।"

"किस तरह"–अध्यक्षा का प्रश्न।

आपको मालूम है–स्त्री शरीर के योग्य बंध किस गुणस्थान तक होता है? महास्थविरा का उल्टा प्रश्न।

'आप ही बताइये –

अरे यह भी आपको मालूम नहीं"– महास्थविरा ने आश्चर्य प्रकट करते हुए समझाया– देखिये स्त्री पर्याय का बंध दूसरे गुणस्थान तक ही होता है–आगे नहीं, किन्तु जब जीव चौथे गुणस्थान में पांचवें छठे सातवें में होता है तो वह केवल पुरुष वेद का ही बंध करता है, स्त्री या नपुंसक का नहीं।

यह बात ता शास्त्र सम्मत है। तात्पय यह कि स्त्रीपन का बध मिथ्यात्व दशा में होना ह और पुरुषपन का बन्ध मिथ्यात्व क सिवाय सम्यक्त्व, देशविरत और सर्वविरत अवस्था में भी होता है। सम्यक्त्वादि अवस्था में स्त्री पर्याय का बन्ध हो ही नहीं सकता। इससे प्रमाणित ह कि पुरुष पर्याय क वनिस्बत स्त्री पर्याय निम्न श्रेणी की ह।

इसके सिवाय स्त्री पयाय में रहा हुआ जीव, तीर्थंकर, चक्रवर्ती वासुदेव, बलदेव, इन्द्र पद, नायत्रिंश पद प्राप्त नहीं कर सकता।

आहारक लब्धि और जघाचारण विद्याचारण लब्धि भी पुरुष ही प्राप्त कर सकत ह।

गणधर, गणी, आचाय उपाध्याय पद का गौरव भी पुरुष ही विशिष्ठ रूप से सम्हाल सकता ह।

पुलाकनिग्रन्थ असाच्चावेवला, परिहार-विशुद्ध चारित्री पुरुष ही हो सकते ह।

नवकल्पी विहार भी पुरुषों के लिए ही नियत ह। नैवलोक में पद्म और शुक्ल लेश्यावाले कवल देव ही होत है। उन देवलोकों में देवी होती ही नहीं।

पूर्वों का ज्ञान भी पुरुष ही प्राप्त कर सकत ह। एक समय में उत्कृष्ट १०८ सिद्ध भी पुरुष ही हो सकते है।

कीर्तिकुमाराजी—'जरा ठहरिये आपने तो पुरुषों की योग्यता और स्त्रियों की अयोग्यता का लम्बा चौड़ा चिट्ठा ही

पेग करना शुरु कर दिया, किन्तु सोचिये तो सही, कि इसमें तथ्य ही कितना है। जब आप यह मानते हैं कि इसी चौवासी में १९वें तीर्थङ्कर श्रीमल्लिनाथजी, स्त्री पर्याय में ही हुए हैं, तो फिर आपके कथन में वास्तविकता कहां रही ?"

सुव्रताजी–"आपके इस प्रश्न का समाधान तो स्वयं सूत्रकार ने, ठाणांग ठा० १० के दस आश्चर्यों में, इसे तीसरा आश्चर्य बताकर कर दिया है। इसका तात्पर्य यह कि अनन्त काल में कभी हो ऐसी घटना होती है जो आश्चर्यभूत मानी जाती है। स्त्री का तीर्थङ्कर होना भी आश्चर्यभूत ही है। इसलिए ऐसी आश्चर्यभूत घटना साधारण सिद्धान्त नहीं बनती। अतएव आपकी उठाई हुई बाधा योग्य नहीं है। आपने देखा होगा कि भूत भविष्य और वर्तमान काल की भरत ऐरवत और महाविदेह क्षेत्र की चौवीसियों में दूसरा कोई उदाहरण आपको नहीं मिलेगा, न चक्रवर्ती आदि पद किसी स्त्री को मिला हो ऐसा प्रमाण आपको कहीं दिखाई देगा।'

कीर्तिकुमारीजी–'क्षमा करिये, आपने जो भी शास्त्रीय आधार बताये वे उस समय–चौथे आरे के होंगे। वर्तमान समय उन शास्त्रों के अनुकूल नहीं है। समय की मांग की ओर भी ध्यान देना चाहिए।"

सुव्रताजी-- समय विशेष से कुछ गड़बड़ हो सकता है। परम्परा से चली आती हुई व्यवस्था को बिगाड़ कर, सिद्धान्त

का मिटान की कोशिश हो सकती है किन्तु उसमें पूर्ण सफलता हो जाय और यह पद्धति निराबाध चलती रहे यह होना अशक्य ही है।"

कीर्त्तिकुमारीजी–' आश्चर्य है कि जो सिद्धान्त, स्त्री को भी मोक्ष प्राप्ति का पूर्ण अधिकार प्रदान करता है, वही तीर्थङ्कर, गणधर, चक्रधरादि पदवियों के लिए उन्हें सर्वथा अनधिकारी घोषित करे यह किस प्रकार माना जाय ?"

सुव्रताजी–' मैंने कहा न कि आत्मसिद्धि के लिए तो मनुष्य मात्र को–भले वह पुरुष हो या स्त्री अथवा नपुंसक हो, हो, द्रव्य क्षेत्रादि की अनुकूलता से पूर्ण अधिकार है किन्तु भौतिक विकास में वह पुरुषों की बराबरी नहीं कर सकती है।"

कीर्त्तिकुमारीजी–' अजी, यह तो पुरुषों की ज्यादती और मनमानी का परिणाम है। बुरा नहीं मानिये आपके ये शास्त्रकार भी तो पुरुष ही थे। उन्होंने स्त्रियों पर अपना प्रभुत्व लाद दिया और शास्त्रों में वैसा विधान भी कर दिया। यदि ये ही शास्त्र स्त्रियों द्वारा बने होते तो स्त्रियों की प्रधानता होकर, पुरुषों को स्त्रियों की वैसी ही अधीनता में रहना पड़ता, जैसे आज स्त्रियों को रहना पड़ रहा है।'

महासतीजी–' सतीजी ! आप यह क्या कहती हैं ! आपके मुंह से ये शब्द ? तब तो आप शास्त्रकारों–तीर्थङ्करों और गणधरों को भी रागी द्वेषी और पक्षपाती मान रही हैं ? वे वीतरागी भगवान यथार्थ वक्ता थे। उन्होंने जैसा जाना,

दखा, वसा ही कहा ह। यदि उनमें पक्षपात होता तो वे स्त्रियों के मोक्ष प्राप्त करने का विधान ही क्या करते ? उन महा–पुरुषों ने बिना पक्षपात के यथातथ्य वस्तु का स्वरूप बताया है।'

"आपको ध्यान रखना चाहिए कि शास्त्रकारों ने हम स्त्रियों की रक्षा के लिये विशेष विधान किया है। हमारा संयम ठीक तरह से पल सके कोई माही पुरुष, हमारी साधना में बाधक नहीं बन सके, इसलिए हमारी रक्षा के लिए कुछ विशेष नियम बनाये हैं जैसे कि–

पुरुष तो खुली जगह अथवा मकान के द्वार खुले रख कर भी सकता है, किन्तु हमारे लिए बन्द जगह तथा साथ ही किवाड़ बन्द करने की आज्ञा दी है। विशेष में हमें वस्त्र की काटडी (चिलमिली) रखने की भी आज्ञा दी है। पुरुषों की अपेक्षा हमारे वस्त्र और उपकरण भी विशेष स्वीकार किये हैं।

लोक में चोथे पाप सम्बन्धी समान अपराध होने पर स्त्री को ही अधिक दोषी माना गया, किन्तु हमारे परमोपकारी शास्त्रकारों ने दोनों को समान अपराधी ही नहीं, किन्तु पुरुष को अधिक अपराधी माना है। बृहत्कल्प उ० १ भाष्य गाथा २२८४, ८५ में लिखा कि– 'स्त्री की अपेक्षा पुरुष अधिक अपराधी होता है। क्योंकि पुरुष–प्रधान धर्म है, और पुरुष, मानस आदि की दृष्टि से स्त्री से विशेष सत्त्व सम्पन्न है। स्त्री अल्प सत्त्व, परवश और उसके वेदोदय भी पुरुष की अपेक्षा अधिक होता है।" इस प्रकार पुरुष को प्रधान मानने के साथ

उसकी जवाबदारी भी अधिक मानी गई।"

"पुरुष वग स रक्षित रहने की दृष्टि से शास्त्रकारा ने हमें तान ठाणे स कम रहन की इजाजत नही दा और सुभीता यह कि साधारणतया श्रमण एक स्थान पर शषकाल में एक माह से अधिक नही रह सकता जब कि हमें लगातार दो माह तक रहने की सुविधा ह।"

"हमारे शास्त्रकार महर्षि कितन निष्पक्ष ह इसका नमूना दखें कि शास्त्रकारा न स्त्री को सातवी नरक जसे परम निकृष्ट स्थान पर जाने का निषध कर दिया जब कि पुरुष उस दशा को प्राप्त हा सकता है, अर्थात स्त्री इतनी अधमाधम नही बन सकती–जितना कि पुरुष बन सकता ह। और मोक्ष जसा सर्वोत्कृष्ट स्थान ता स्त्री पुरुष दाना पा सकत ह। यदि पक्षपात हाता, तो स्त्री का सातवी और पुरुष का छठी नरक बताना था और स्त्री को मोक्ष से वचित रखना था।"

'फिर देखिये अन्तर्मुहूर्त का तियच आठवें स्वग में जा सकता ह जब कि मनुष्य, प्रत्येक वष के बिना इतना नही जा सकता। ये सब निष्पक्षता के प्रमाण ह। यदि उनकी पक्षपाती दृष्टि हाती, ना एसे विधान नही हात।"

कान्तिकुमारीजी– अजी रहन दीजिए आपके शास्त्र–कारा की उदारता की वडी वडी बातें। जिन्हाने भगवान के समवसरण में बठने का भी मनाई कर दी। जानवर बठ सके पर हम बठ भी नही सके, ऐसी ह शास्त्रकारो की उदारता।

सुव्रताजी– "शास्त्रकारा न तो बठन की मनाई नही की। आपन कहा पढ़ो ?"

कीत्तिकुमारीजी–' समवसरण के अधिकार में ही कहीं लिखा होगा ?

सुव्रताजी–' न। फिर आपन तो यह सब नहीं देखा। श्री उववाई और दशाश्रुतस्कन्ध में महाराजा कुणिक और श्रणिक के प्रभु वन्दन का वर्णन है (भगवती आदि में भी) वहा लिखा कि– 'राजा के आगे करके रानी पीछे ठहरी और पयुपासना करने लगी। इस जगह मूल पाठ में 'ठिइया' शब्द है, जिसका अर्थ टीकाकार न ऊर्ध्वस्थिता" किया। जिसका भाषाकार 'खड़ा रहना' अर्थ करते हैं। यदि ठिइया' शब्द का अर्थ पीछे 'ठहरना माना जाय तो मूत्र से संगति बैठ जाती है क्योंकि उपदेश श्रवण के बाद वापिस लौटने समय रानी के लिए भी लिखा है कि– उट्ठाए उट्ठेई –वह जान के लिए उठी, उठकर इस पर ध्यान देने से मालूम होगा कि रानी बैठी थी तभी तो उठी। यदि बैठती नहीं, तो उठने का प्रसंग ही कैसे आता ? यदि ठिइया' शब्द का खड़ा रहना अर्थ माना जाय, तो भी यही भाव निकलेगा कि वह अपनी इच्छा से खड़ी रहीं। तीर्थङ्कर देव या और किसी न वहां बैठने की मनाई की हो, ऐसा तो उस स्थल का भाव नहीं है न वैसे शब्द ही है। तथा किसी भी सूत्र में ऐसा नहीं लिखा है कि स्त्रियों को समवसरण में बैठने का अधिकार नहीं है।

'समवसरण में तिर्यच स्त्रियां भी जाती थी, और वे भी बैठती थीं। परन्तु पक्षा भी बैठते थे। मनाई होती, तो स्त्री पर्याय मात्र के लिए होती। यदि समवसरण में स्त्रियों को बैठने का अधिकार नहीं होता तो उसकी परम्परा बराबर चलती और किसी भी साधु के सामने साध्वी तथा श्राविका बैठ ही नहीं सकती।'

बैठने का निषेध नहीं होने पर ही प्रति रुद्ध रोगा, तपस्वी तथा श्रमण स्त्रियां तथा उरपुर और भुजपुर स्त्रियां समवसरण में देशना श्रवण कर सकती थी। यदि तीर्थङ्कर के समवसरण में बैठने की मनाई होती तो उपरोक्त प्रकार की स्त्रियां तो उस लाभ से वंचित ही रह जातीं और मल्लीनाथ भगवान् की आभ्यन्तर परिषद का (जो साध्वियां का ही थी) स्थान, साने आदि का मौका ही कैसे मिलता, क्योंकि वे तो सदैव प्रभु के पास ही रहती थीं।'

जिस प्रकार साध्वी, वीतराग वाणी (एकादशांग)का स्वाध्याय बैठ बैठे कर सकती है वैसे वह वाणी श्रवण भी करे तो इसमें कौनसा दोष है ?'

'इस प्रकार आपके समझ में आ गया होगा कि जिना गमों में कहीं भी ऐसा विधान नहीं है कि जिसमें समवसरण में, तीर्थङ्करों अथवा गणधरादि साधुओं के समक्ष, स्त्रियां और साध्वियों को बैठने की मनाई की गई हो।'

"यदि कोई अपनी इच्छा एवं उल्लास से खड़े खड़े ही

सुने तो उसे विधान नहीं कहते हैं। आज भी जाहिर व्याख्यानों में कई लोग खड़े खड़े ही भाषण सुनते हैं। कुछ वक्ता बैठकर व्याख्यान देते हैं तो कुछ खड़े खड़े भाषण करते हैं। इसी प्रकार सुनने वाले भी इच्छानुसार खड़े रहें या बैठें, तो इससे किसी वर्ग के प्रति विधान मान लेना उचित नहीं लगता।"

'शास्त्रकारों ने स्त्रियों को कुछ विषयों में पुरुष से कम अधिकार दिए। इसका मतलब यह नहीं कि उन्होंने स्त्रियों के जन्मसिद्ध अधिकारों का अपहरण किया हो। वास्तव में स्त्री पर्याय में रहकर विशिष्ट प्रकार की साधना अथवा विशिष्ट अधिकारों का प्रभावशाली ढंग से निर्वाह करना सरल नहीं है। शारीरिक दृष्टि से जितनी अनुकूलता पुरुषों को है, उतनी ही स्त्रियों को नहीं है। इसलिये स्त्रियों का एकाकी विहार सर्वथा निषिद्ध है। जब पुरुष, विशिष्ट शक्ति सम्पन्न होता था, तब एकाकी विहार (जिनकल्प धारण) कर सकता था। उस समय भी साध्वी तीन से कम नहीं रह सकती थी और न स्त्री खुले में अथवा जंगल में आतापनादि ले सकती है। इसका एक मात्र कारण यही है कि उसके शरीर की रचना ऐसी है कि जिस पर आक्रमण होने की सम्भावना है। स्त्री की इच्छा के विरुद्ध भी उसके शरीर पर आक्रमण हो सकता है-जिसे बलात्कार कहते हैं। इसके लिए सुज्येष्ठा का उदाहरण स्पष्ट एवं पर्याप्त है। किन्तु यह भय पुरुष के लिए नहीं है। यदि पुरुष नहीं चाहे, तो हजारों स्त्रियाँ मिलकर भी, उसकी इच्छा के बिना ही उससे विषयेच्छा पूर्ण नहीं कर सकती। अभया

यदि दोनों में समानता होती, तो शरीर रचना भी बिल्कुल समान ही होती। तब किसी प्रकार का मत भेद नहीं रहता और भेद तथा समानता का प्रश्न ही नहीं उठता। स्त्रियों को अधिक महत्व इन बातों में भी प्रकार के लाग होते हैं। एक तो वे जो पुरुषों अथवा साधुओं द्वारा सताई हुई अथवा सामाजिक रूढ़ियों के कारण दुःखी बनी हुई स्त्रियों की दशा पर करुणा लाने वाले। और दूसरे वे जो स्त्रियों को स्वच्छन्दचारिणी बनाना चाहते हैं। करुणा लाने वालों में भी बहुत से उन्हें स्वेच्छाचारिणी बनाने की भावना वाले होते हैं व स्वैर-विहार को पसन्द करने वाले होते हैं। यदि उन्हें स्वैरविहार पसन्द नहीं होता, तो वे कभी भी सहशिक्षण, सहविचरण, सह उद्योग और बन्ध से कथा मिलाकर पुरुष के अधिक सम्पर्क में रहने की सिफारिश नहीं करते। स्त्रियों के ऐसे हिमायतियों से स्त्रियों को सदा बच कर ही रहना चाहिए। हमें अधिकार के झगड़ों से दूर रह कर प्राप्त सुयोग को अधिक से अधिक सफल बनाने की ओर ही ध्यान देना चाहिये। यदि हमने इधर ध्यान नहीं देकर अधिकारों के झगड़े में लगी रही, तो हम में द्रव्य साधुता भले कुछ अंशों में मानी जाये, पर भाव साधुता से हम दूर रहेंगी और प्राप्त सुयोग का व्यर्थ गँवा देगी।'

महास्थविरा महासती सुप्रमोजी के शास्त्र और युक्ति संगत समाधान को सुनकर कितनी ही 'महासतियों' की गलत धारणा दूर होगई और सम्यग्ज्ञान का प्रकाश हुआ। वे महा-

सव्राजी क समयन करन लगीं, किन्तु बहुतसी-जमाने के रग में इतना ग गई थी कि उन्हें ये सच्ची बातें भी रुचिकर नहीं लगी। उनमें से एक श्री मोहनकुमाराजा ने उठकर कहा कि—

"चाहे शास्त्र और युक्तियें कुछ भी कहें, हम इनकी परवाह नही करेंगी। जिस उद्देश्य को लेकर हमारा यह सम्मेलन हो रहा है, उसी को सफल करने का विचार करना चाहिये। अब तक जो चर्चा हुई वह सम्मेलन के उद्देश्य के विपरीत है। मैं अध्यक्ष महोदयों से निवदन करती हूँ कि आप सम्मेलन के अनुकूल ही काररवाई करें। यदि हमारी काररवाई किसी को पसन्द नहीं हो तो वे इस सम्मेलन से अलग हो सकती हैं।"

"श्री कांतिकुमाराजा का विश्वास था कि हमारी चर्चा का परिणाम अच्छा हो जायगा और सुव्रताजी जैसी प्रभावशाली महासती अनुकूल हो जायगी, तो सफलता में सन्देह नहीं रहेगा। किंतु चर्चा का परिणाम अच्छा नही रहा। श्री कांतिकुमारीजी म भाषा-ज्ञान था, किंतु सैद्धान्तिक ज्ञान उनमें नहीं था, और महासती सुव्रताजी वयोवृद्ध होने के साथ ज्ञानवृद्ध एवं अनुभव-वृद्ध भी थीं। श्री कांतिकुमाराजी ने बिगड़ी हुई बाजी को सुधारने के लिये यही उचित समझा कि सभा बरखास्त करदी जाय और कल पर इस विषय को छोड़ दिया जाय।

(प्रथम दिन की सभा समाप्त हुई)

दूसरे दिन

आज की सभा में महास्थविरा महासतीजी के दर्शन नहीं हो रहे थे। कल के विवाद से सुधारक वर्ग नाराज हो गया था। उसने सोच लिया था कि विवाद और शास्त्रार्थ के झगड़े में नहीं पड़ कर हमें अपना काम करना चाहिये। इसी निश्चय को सफल करने के लिए आज की यह सभा हो रही थी। कल के विवाद से यह स्पष्ट मालूम हो गया था कि कुछ महामतियें परम्परावादी वर्ग की ओर झुक गई। इसलिए महामती सुव्रताजी को यह सूचना करवा दी गई थी कि "यदि आप हमारी कारवाई में सहायक बन सकें, तो अवश्य पधारें।"

सभा की कारवाई प्रारम्भ करते हुए अध्यक्षा श्री कीर्तिकुमारीजी ने कल के महासती श्री सुव्रताजी के प्रभाव को नष्ट करने के लिए कहा—

"उपस्थित श्रमणीवृन्द ! कल का शास्त्रार्थ आपने सुना ही है। कदाचित आप में से कुछ महासतियों को यदि उनके विचार उपादेय लगे हों, तो मैं आपके सामने यह स्पष्ट कर दूं कि हम भी शास्त्रों को मानती हैं और पुरातन उचित रीतियों का पालन करती हैं, किन्तु स्त्री स्वातन्त्र्य के विषय में हमें जमाने का ख्याल भी रखना पड़ेगा। आज के युग में नारी वर्ग ने कितनी उन्नति कर ली है। यदि हम युग धर्म की ओर से आँखें बन्द कर लेंगी, तो हम तो पिछड़ेंगी ही, पर

समाज की नजरों से भी गिर जायेगा। इसलिये हमें युग की पुकार को ही मुख्यता देनी है। शुभ कार्य की शुरुआत में विघ्न तो आया ही करते हैं। हमें उन विघ्नों की ओर नहीं देखकर केवल आगे बढ़ने का ही विचार करना चाहिये। हमारे सामने श्रमणों का आदर्श उपस्थित है। श्रमण संघ ने भी परम्परागत एवं शास्त्र सम्मत उपाध्याय पद का त्याग + करके मंत्री पद को अपनाया है और धर्म की व्याख्या ही बदल दी है *। यह सब सर्व सम्मति से हुआ है। ऐसी सूरत में हमें अपनी उन्नति के लिये शास्त्राज्ञा या किसी युक्ति के झमेले में नहीं पड़ना चाहिये। हमारा ध्येय एक मात्र स्त्रियों का पुरुषों से सर्वथा समानता कायम करना है। इसलिए आपको एक मात्र यही दृष्टिकोण रखना चाहिये। मेरे इतने खुलासे से आप सब समझ हो गई होंगी। अब मैं आपके सामने अपने ध्येय को स्पष्ट करनेवाला निम्न प्रस्ताव उपस्थित करती हूं। आशा है कि आप इसे सर्व सम्मति से स्वीकार करेंगी।"

कुछ व्यक्तियों की ऐसी प्रकृति होती है कि उन पर जैसा रंग चढ़ाना हो वैसा चढ़ सकता है जिसे ढिलमिल विचार कहते हैं। ऐसे व्यक्ति स्थिर विचार वाले नहीं होते हैं। उनको

+ सादड़ी सम्मेलन ने पूर्व के उपाध्यायों का त्याग पत्र ले लिया और नये उपाध्याय कायम नहीं किये तथा 'मंत्री' पद की नयी परम्परा कायम की। उपाध्याय पद की पूर्ति भीनासर सम्मेलन में की गई।

* 'केवली प्ररूपित धर्म' हटाकर 'अहिंसा परमोधर्म' के मजनपौराणिक सिद्धांत को अपनाया था। इसकी शुद्धि भीनासर सम्मेलन में हुई।

बुद्धि का ठीक विकास नहीं हुआ है। इसीलिए तो शास्त्रकारों ने अन्य विचारकों-प्रचारकों के परिचय से दूर रहने का नियम बनाया है। महास्थविराओं की बात की शक्ति और प्रवचन सम्मत युक्तियों को सुनकर जिन महासतियों पर अनुकूल प्रभाव पड़ा था, उनमें से कुछ महासतियों पर आज के भाषण ने विरागता असर जमाया। उनपर का पूर्व प्रभाव हट गया और वे नये रंग में रंग गईं।

अध्यक्षा श्री कीर्तिकुमारीजी ने अपनी सभा के उद्देश्य को प्रकट करने वाला निम्न प्रस्ताव उपस्थित किया।

"मनुष्यों में पुरुष और स्त्री ये दोनों ही बराबरी का स्थान रखते हैं। दोनों की योग्यता व्यक्तित्व और शक्ति एक समान ही है, किन्तु बहुत लम्बे समय से पुरुष वर्ग स्त्री वर्ग पर आधिपत्य रखता आया है और स्त्री वर्ग को दबा रखा है। गृहस्थों में ही नहीं, त्यागियों में भी ऊँच नीच की भावना है। यह बड़ा भारी अन्याय है। पुरुष वर्ग के इस अन्याय का सामना करके समानता प्राप्त करना ही इस सम्मेलन का मुख्य-उद्देश्य है।"

प्रस्ताव उपस्थित होते ही जोर की हर्ष ध्वनि हुई। इसके समर्थन में कई महासतियों के भाषण हुए। जब समर्थन में बहुत ही उत्साह देखा, तो अध्यक्षा की प्रसन्नता का पार नहीं रहा। वे खड़ी होकर सभा से पूछने लगीं—"इस प्रस्ताव को सर्व सम्मति से पास कर दिया जाय?" तब महासती-मृगावतीजी

ने गढ़े हास्र कहा कि मेरा इसमें विरोध है। मैं मानती हूं कि इसकी सिद्धि के लिए हम पुरुष वर्ग के विरुद्ध आन्दोलन करना पड़ेगा। अनेक प्रकार के प्रपञ्च होंगे और हमारा अधिकांश समय इसी आन्दोलन में लग जायगा। इसी के विचारों में हमारा मन लगा रहेगा। जिससे हम ज्ञान, ध्यान और संयम आराधना में अपने यागों को नहीं जोड़ सकेंगी। ऐसी दशा में हम मात्र नाम और वेश से ही साध्वी रह जायेंगी। इसलिये इस सम्मेलन में हमें अपनी कमजोरियों को हटाकर आत्म-बल बढ़ाने और जिनमार्ग दीपाने में आर-ही शक्ति लगानी चाहिये। कल मध्यस्थविराजो ने जो कुछ फरमाया था, हमारे लिये उनकी राय ही हितकारी सिद्ध होगी। अतएव मुझे और मेरे साथ की अन्य चार सतियाजी को इस प्रस्ताव के विरोध में मानें।"

श्री भगवतीजी के इस विरोध के बाद दूसरी भी लगभग ६५ साध्वियों का विरोधात्मक हुआ। यह सब कल के शास्त्रार्थ का परिणाम था। इससे उपरोक्त प्रस्ताव सर्व सम्मति से पास नहीं होकर बहुमत से पास हुआ। अध्यक्षाजी की जो प्रसन्नता, प्रस्ताव का समर्थन देखकर हुई थी, वह नहीं रही। इस विरोध ने उनकी प्रसन्नता कम करदी।

इसके बाद सभा में दूसरा प्रस्ताव श्री सूर्यकान्ताजी की ओर से उपस्थित हुआ, जो इस प्रकार था।"

"२ "यह साध्वी सम्मेलन निश्चय करता है कि आगामी

सम्मेलन में हमारा प्रतिनिधित्व हम ही करेंगी। साधुओं को हमारा प्रतिनिधित्व करने की आवश्यकता नहीं है। अवसर देखे बिना पूछे ही मुनिराजों ने, अपनी सत्ता से ही हमारा प्रतिनिधित्व, अपने हाथों में लेकर, हम पर अत्याचार किया है। उस अत्याचार की सारी ही प्रबल शक्ति छिन्न भिन्न करके सर्वतन्त्र स्वतन्त्र होकर रहेगी। हमने आज साधुओं की हुकूमत का जुआ उतार फेंका है। अब साध्वियों का प्रतिनिधित्व कोई साधु नहीं कर सकेगा। यदि हमारी अनुपस्थिति में सम्मेलन होगा तो उसके नियमों की पाबंदी हम पर नहीं रहेगी। इसलिए श्रमण संघ को चाहिए कि आगामी सम्मेलन में हमें आमंत्रित करे, कि जिससे सम्मान पूर्वक प्रतिनिधित्व के साथ हम उपस्थित हो सकें।'

सती चन्द्रकांताजी—'मैं इस प्रस्ताव से पूर्ण रूप से सहमत हूँ किन्तु इसकी भाषा जरा उत्तेजक है। इसलिए प्रस्ताव का शाब्दिक रूप बदल देना चाहिए। श्रमण संघ का रुख हमारे प्रतिकूल नहीं है। अनेक श्रमण पूर्ण रूप से हमारे समर्थक हैं। ऐसी दशा में हमें भी शान्ति से ही काम लेना चाहिए। उत्तेजक शब्दों से कदाचित् अनुकूलता में अन्तर आ जाय।"

अध्यक्षा ने इस सुझाव को स्वीकार कर श्री चन्द्रकांताजी की सलाह से प्रस्ताव बनाकर पेश करने का आदेश दिया। वह सुधरा हुआ प्रस्ताव इस प्रकार था।

'यह सम्मेलन निश्चय करता है कि आगामी सम्मेलन में हमारा प्रतिनिधित्व हम स्वयं ही करेंगी। अब तक श्रमणों ने हमारा प्रतिनिधित्व करके हमारा भार भी वहन किया है। अब हम संगठित हो गई हैं। हममें अपने पैरों पर खड़ी होने की शक्ति आ गई है। इसलिए हमारा उत्तरदायित्व हम संभाल लेंगी। अब मुनिराजों को कष्ट देना हम नहीं चाहतीं। श्रमणवृन्द से हमारा निवेदन है कि आगामी सम्मेलन में हमें भी आमंत्रित करें।'

— मंत्री पद की माँग भी करनी चाहिये न ?"—एक सुझाव।

प्रतिनिधित्व प्राप्त होने पर मन्त्री और आचार्य पद तो अपने हाथ की ही चीज है। क्योंकि हमारी संख्या श्रमणों से लगभग दुगनी है। इसलिये बहुमत तो हमारा ही होगा। हमारा मत मिले बिना कोई भी कार्रवाई सम्पन्न नहीं हो सकेगी। यदि हमारा संगठन दृढ बना रहा तो निश्चय ही पूरा शासन हमारे हाथ में रहेगा—" श्रीमती कांतिकुमारीजी ने समाधान किया।

'यदि श्रमण संघ ने हमारा प्रस्ताव स्वीकार नहीं किया तो—' पुनः प्रश्न।

यह प्रश्न ही गलत है। चुनाव पद्धति स्वीकार कर लेने से व्यवस्थिति से उसे हमारा प्रतिनिधित्व स्वीकार करना ही पड़ेगा। फिर संसार में अनेक 'युवक और प्रौढ पुरुष,

स्त्रियों के साथ हमदर्दी रखने वाले हैं। पुरुषों का स्वाभाविक झुकाव स्त्रियों की ओर रहता ही है। श्रमण संघ में भी बहुत से युवक संत हमारे पक्ष में हैं। आपने देखा भी होगा कुछ नवयुवक मुनियों ने हमारे पक्ष में कितने उग्र लेख लिख डाले हैं। उनको उनके गुरुओं की मदद मिलती ही है। क्योंकि बहुत से गुरु ऐसे हैं जो अपने शिष्यों की इच्छा के विपरीत नहीं जा सकते। इतना होते हुए भी यदि श्रमण वर्ग ने हमारे प्रस्ताव को नहीं माना तो हम अपना भिन्न संगठन जमा कर उनसे अलग हो जावेंगी। इससे भी हमारा शासन हमारे हाथ में रहेगा। हम पुरुषों की आज्ञाकारिणी नहीं रहेंगी। यदि पुरुष वर्ग नहीं समझा तो उससे हमारा वंदना व्यवहार का सम्बन्ध एकदम टूट जायगा। हम शान्ति से काम करना चाहती हैं। इसलिए अभी वन्दना व्यवहार में समानता का प्रश्न उठाना नहीं चाहतीं। प्रतिनिधित्व के पाने के बाद आगामी अधिवेशन में ही यह प्रस्ताव रखेंगी कि 'साध्वी प्रत्येक और छोटे साधु को भी वंदना करे',—इस गलत रूढ़ि को आज से खत्म कर, दीक्षा पर्याय के आधार पर श्रमण श्रमणियों को और श्रमणी श्रमण को—बिना किसी भेद भाव के वन्दना नमस्कार करे।"

"पहले प्रतिनिधित्व प्राप्त हो जाय फिर तो सारी सत्ता धीरे धीरे अपने अधिकार में आ ही जायगी। अभी से इन बातों पर विचार करना उचित नहीं है।" अध्यक्षा ने समाधान किया।

'हां, तो इस प्रस्ताव को सब सम्मति से पास होना जाहिर किया जाय।"

'हमारा विरोध-पहले की तरह कायम है"-महासती मृगावतीजी ने व अन्य महासतियों ने अपना विरोध बताया। प्रस्ताव बहुमत से पास हुआ।

संगठन में विघटन

विराट नगर में साधु सम्मेलन का आज दूसरा दिन है। सभी प्रतिनिधि मुनिराजों की उपस्थिति में सम्मेलन की कारवाई चल रही है। कुछ युवक मुनिराज, साध्वियों के प्रतिनिधित्व वाले प्रस्ताव की उत्सुकता पूर्वक प्रतीक्षा कर रहे हैं। वृद्ध एवं अनुभवी मुनिराज चाहते हैं कि पहले अन्य सभी कार्य निपटा लेने के बाद इस प्रश्न को उठाया जाय। किन्तु परिस्थिति में परिवर्तन आ गया। साध्वियों का एक विशाल समूह वहां आ पहुंचा। उनके साथ महिलाओं का झुण्ड भी था और उसकी सरदारी चंचला और चपला बहन कर रही थी। जोशीले नारे लग रहे थे। सम्मेलन के अवसर पर ही कॉन्फरन्स का अधिवेशन रखने से पुरुष वर्ग की ओर से भी, इस आन्दोलन को पर्याप्त सहयोग मिला। संयोजक श्री केशव-भाई ने घबराते हुए उपस्थित होकर श्रमण सम्मेलन के अध्यक्ष-आचार्य श्री से निवेदन किया-

'भगवन्! परिस्थिति को संभालिये। बाहर को

वातावरण बहुत ही उत्तेजित हो चुका है। साध्वियों के प्रश्न का अब नहीं टाला जा सकता। यदि आपने परिस्थिति नहीं समाली, तो बदनामी होगी। इसी स्थल पर साध्वियों से आपका सम्बन्ध विच्छेद हो जायगा और इनका अलग संगठन बनेगा। इतिहास में यह एक बडा दुघटना होगी। संगठन में विघटन होगा। यदि आपने इस समय दीर्घदृष्टि से काम लिया, तो संसार में आपकी क्रांति चारों ओर फैल जायगी। राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री आदि अनेक राष्ट्र नेताओं की ओर से आपको बधाई मिलेगी। राज्य कर्त्ताओं और देश के नेताओं के हृदय में धर्मगुरुओं का सम्मान पूर्ण स्थान प्राप्त हो जायगा। यह अनमोल समय फिर आने वाला नहीं है।"

सयाजन के निवेदन के बाद ही श्री नवीनकुमारजी महाराज बोले– 'आचार्यवर! बहुत हो चुका। अब आपका परम्परागत अत्याचार नहीं चलने का। यदि आपने सम्मान पूर्वक साध्वियों को स्थान नहीं दिया तो फिर पछताना होगा। युगधर्म की अवगणना करके कोई सफल नहीं हो सका है। आप पूर्वग्रह छोडकर नई दृष्टि अपनावेंगे, तब आपको सत्पथ दिखाई देगा।"

'प्रतिनिधि के अतिरिक्त किसी को भी नहीं बोलना चाहिए' श्रीप्रधानमंत्रीजी म साहब ने नियम का भान कराया।

'आप हमारा मुह क्या बन्द कर रहे हैं? क्या हम झक मारने के लिए इतना लम्बा विहार करके यहां आये हैं?

क्या हम हिताहित का विचार नहीं कर सकते है? यदि हम मूक थे ता हमें साधु क्यों बनाया ? क्यों हमें × × ×"

"प्रमादकुमारजी ! ख्याल रक्खो कि तुम मुनि हो तुम्हें अपनी भाषा समिति का ध्यान रखना ....

"क्या ध्यान रक्खें ? आप बड़े बूढों को अपनी सत्ता का इतना अधिक मोह हो गया है कि इसके विपरीत आप एक शब्द भी सुनना नहीं चाहते और हम युवक साधुओं की स्पष्टोक्ति का नहीं सहकर गुरुआसातनाहीन, कटुभाषा आदि आक्षेप करते है"—मुनि प्रमादकुमारजी ने अपने गुरु श्री प्रमचन्द्रजी महाराज की बात काटते हुए कहा।

"महासतियों संबंधी प्रस्ताव उपस्थित किया जाय"—प्रमुख आचार्यश्री ने प्रधान मन्त्रीजी महाराज सा० को आदेश दिया। प्रधानमंत्री मुनिराज ने फरमाया।

"उपस्थित प्रतिनिधि मुनिवरों! साध्वियों को श्रमण सम्मेलन में प्रतिनिधित्व देने का प्रस्ताव साध्वी सम्मेलन की ओर से भी प्राप्त हुआ है और मुनिश्री सूरतचन्द्रजी ने भी एक प्रस्ताव उपस्थित किया है। ये दोनों प्रस्ताव आपके सामने आ रहे हैं। साध्वियों ने निम्न प्रस्ताव अपने सम्मेलन में पास कर प्रतिनिधित्व की मांग की है—

"यह साध्वी सम्मेलन निश्चय करता है कि आगामी सम्मेलन में हमारा प्रतिनिधित्व हम स्वयं ही करेंगी। अबतक संतोंने हमारा प्रतिनिधित्व करके हमारा भार भी वहन किया

"यह श्रमण सम्मेलन मानता है कि जैन धर्म में स्त्री पुरुष का कोई भेद नहीं है। लैंगिक भेद से धर्म में भेद नहीं हो सकता। स्त्री और पुरुष दोनों एक ही समान कक्षा में रहे हुए हैं। कोई किसी से बड़ा छोटा नहीं है। इसलिए श्रमणी वर्ग का प्रतिनिधित्व भी श्रमण वर्ग की तरह होना नितान्त आवश्यक है। श्रमणी वर्ग को चाहिए कि वे नियमानुसार सम्मेलन में अपने प्रतिनिधि भेजें और कार्रवाई में पूर्णरूप से भाग लें।"

प्रस्ताव के समर्थन में मुनि नवीनकुमारजी और शैलेशकुमारजी ने धुआँधार भाषण झाड़े। प्रमुख श्री की ओर से कहा गया कि 'यदि कोई विपरीत मत रखता हो, तो अपने विचार सभा के सामने प्रस्तुत करे'। यह सुनते ही मंत्री श्री सौभाग्यचन्द्रजी म० ने अपना विरोध निम्न शब्दों में व्यक्त किया —

"आदरणीय अध्यक्ष महोदय, मंत्रीगण एवं प्रतिनिधि मुनिवरो! प्रस्तुत प्रस्ताव हमारी कमजोरी का ही कारण है। अनन्त उपकारी आगमकार महाराज के विधानों की विपरीतता करके किसी ने लाभ नहीं उठाया। कोई जमाने के असर से भौतिकवादी बनकर स्त्रियों के पक्षकार बने और परोपकारी तीर्थङ्कर गणधर महाराजाओं को दोष दे तो क्या हमारी परिषद् भी उस बात को मान लेगी? यदि आपको जमाने का गुलाम बनना है तो पहले उन सिद्धान्तों को

स्वीकार कर देना चाहिए जिसमें स्त्री पर्याय का बंध दूसरे गुणस्थान तक ही माना है और सम्यक्त्वावस्था में स्त्री पद के बंध होने की मनाई की गई है। आप को यह भी स्वीकार करना होगा कि क्षेमंठ दर्शनीय मनुष्यों में पुरुष की तरह स्त्री भी हो सकती है। आपको उन सिद्धान्तों को भी असत्य साबित करना पड़ेगा-जिनमें यह माना है कि दूसरे स्वर्ग से आगे सर्वार्थसिद्धि तक (जो कि उच्चकोटि के देवलोक है) देवांगनायें उत्पन्न नहीं होतीं। इस प्रकार के सब सिद्धान्तों को गलत ठहराने के बाद ही आप स्त्री पुरुष की समानता का प्रस्ताव स्वीकार करें, तो कदाचित् चल सकेगा। ऐसा नहीं हो सकता कि हम सिद्धान्तों को भी मानते रहें और उनकी खिलाफत भी करते रहें। जो भी निर्णय हो स्पष्ट रूप से होना चाहिए"।

मन्त्री श्री शोभाचन्द्रजी महाराज के बैठ जाने के बाद मन्त्री श्री धर्मालचन्दजी म० खड़े हुए। उन्होंने कहा —

"स्त्री पुरुष की समानता मानने में सैद्धान्तिक हानि ... है। उसका दिग्दर्शन मेरे पूर्व विद्वान वक्ता ने ... आपको करा ही दिया है। मैं उन सब का समर्थन ... विशेष में निवेदन करता हूँ कि यदि आप ... पात करेंगे, तो आपको मालूम होगा कि ... समानता बताई जाती है, वह सत्य नहीं ... शरीराकृति ... ना का भेद है ...

स्पष्ट कर रहा हूं। जहां असमानता है, वहां ऊँच नीच का का विकल्प भी रहेगा और उस विकल्प, की तटस्थता पूर्वक तोलन कर पुरुष की प्रधानता सिद्ध हो ही जायगी, जिसे हमारे आगम सदा से घोषित करते आये हैं। मैं आशा करता हूं कि श्रमण वर्ग इस पर शांति से विचार करेगा।'

मन्त्री मुनिश्री अमोलकचन्दजी के पश्चात् मुनि श्री धर्मचन्द्रजी ने अपना विरोध व्यक्त करते हुए कहा—

'हम देखते हैं कि सिद्धान्त पक्ष और प्राचीन उत्तम परम्परा के विरुद्ध कारवाई श्रमणों की ओर से उपस्थित हो रही है। जमाने के नाम पर उत्तम प्रणालिका का लोप किया जा रहा है। प्रस्तावक मुनिजी और उनके ही मत के पूर्व वक्ता के भाषण के दोनों और विचारों पर ध्यान देने से यह सरलता पूर्वक समझ में आ सकता है कि वे परम वीतरागी पुरुषों को भी अन्यायी और अत्याचारी मान रहे हैं। उनकी दृष्टि में जमाना ही सब कुछ है। हमें जमाने के चरणों में अपने सिद्धांतों को भी भेंट करने को विवश कर रहे हैं। यदि ऐसी कारर-वाई हुई, तो हमारा सम्मिलित रहना असम्भव हो जायगा। सैद्धांतिक विपरीतता अब हम नहीं चला सकते।'

इसके अतिरिक्त अनेक मुनियों का विरोध व्यक्त हुआ। सैद्धांतिक पक्ष का उग्र विरोध सुधारक पक्ष सहन नहीं कर सका। अध्यक्ष महोदय मत गणना करवाना चाहते थे। किन्तु सुधारक पक्ष की ओर से कहा गया कि— "हमें परिस्थिति को

का अवहेलना कर रहे ह । शास्त्रों के विरुद्ध आप वस्त्र धोते ह । गृहस्थों का दूर दूर से बुलवाते हैं। उनका सम्मेलन करवाते ह । पुस्तकें छपवाते हैं। लेख लिखकर पत्रों में छपवाते हैं। प्रेस कॉन्फरेन्स बुलवाते ह । रात का पानी भी रखने लग गये ह । आप ऐसे कितने ही कार्य करते ह, जो जैन शास्त्रों के प्रतिकूल ह, फिर साध्वियों के समानाधिकार देने में ही रुकावट क्यों डाली जा रही ह ? जब शास्त्र विरुद्ध 'मन्त्री' पद आपको दिया जाने लगा, तब तो अधिकार के मोह में आपको शास्त्र की नीति रीति नहीं दिखी । पदारूढ़ होने की उमंग में शास्त्रों की मर्यादा भी भूल गये और आज साध्वियों का प्रश्न सामने आया, तब शास्त्रों को आगे कर रहे ह । यही है आपकी साधु नीति का नमूना ? न्याय से तो आपको अब बोलने-विरोध करने का अधिकार ही नहीं ह । समर्थक बनने में ही आपकी शोभा ह । इस व्यावहारिक बात को सोचकर ही साध्वियों का प्रतिनिधित्व स्वीकार करें।"

मुनिश्री सूरतचन्द्रजी की भर्त्सना सुनकर सभी मुनियों को क्षोभ हुआ। मन्त्री मुनिश्री शोभाचन्द्रजी म० प्रतिवाद करने को खड़े हुए। उनके चेहरे पर रोष अथवा उत्तेजना का नाम भी नहीं था। वे प्रसन्न मुद्रा से सभा को सम्बोधन कर कुछ कहना ही चाहते थे, कि अध्यक्ष महोदय ने कहा—

प्रस्ताव के पक्ष और विपक्ष की दलीलें उपस्थित हो चुकीं। अब विशेष बोलने में रोश बढ़ने की आशंका ह। इसलिए इस प्रस्ताव पर किसी को भी बोलने की आज्ञा नहीं

दी जा सकती। कृपाकर आप बैठ जायँ।"

'जैसी आपकी आज्ञा"–मन्त्रीश्री आभाचन्द्रजी म० ने अध्यक्ष की आज्ञा का मान देते हुए कहा–'मैं मैं सी प्रस्ताव के विषय में कुछ कहना चाहता हूँ, न राय का मशविरा लेने को ही खड़ा हुआ हूँ। मैं बहुत दिनों से जो चाहता था, वह आज सफल होने जा रहा है। इसलिए केवल दो मिनट ही चाहता हूँ।'

अध्यक्ष की आज्ञा होते ही मन्त्रीवर ने फरमाया—

मैं बहुत दिनों से चाहता था कि यह 'मन्त्री' पद मेरे लिए भार रूप बन गया है। भार से हल्का होने के लिए ही दीर्घकालीन आचार्य पद छोड़ा। किन्तु फिर भी मन्त्रीपद आया। यद्यपि यह पद भी मैं नहीं चाहता था किन्तु परिस्थितिवश अनिच्छा पूर्वक स्वीकार करना पड़ा–यह सोचकर कि इसमें भी यदि संघ की कुछ सेवा हो सकती हो तो लाभ उठाना चाहिए। किन्तु मैंने देखा कि यह काम मेरे वश का नहीं है। मैं इसमें कुछ भी उपयोगी नहीं हो सकता। तब मैंने यही निश्चय किया कि मुझे यह पद छोड़कर अलग हट जाना चाहिए। इसके लिए मैं उचित अवसर की राह देख ही रहा था, वह अनायास ही प्राप्त हो गया। अतएव मैं अपने पद और प्रतिनिधित्व से पृथक होना चाहता हूँ। मैं इसी समय से अपने को पृथक समझता हूँ। मैं अभी यहीं बैठूंगा, पर किसी भी कारवाई में भाग नहीं लूंगा। श्री सूरतचन्दजी या और कोई यह नहीं समझें कि मैं इनके कहने से ही पृथक

हा रहा हूँ। मेरी बहुत दिनों की इच्छा था। म अपनी उसी इच्छा को सफल कर रहा हूँ।

मन्त्री श्री धमचन्द्रजी म० ने भी मन्त्री श्री शोभाचन्द्रजी महाराज का अनुसरण किया। सारी सभा में हलचल मच गई। मुनि श्री सूरतचन्दजी का मुह छोटासा हो गया। आचाय श्री आदि दोनो को समझाने लगे। इतने में मुनिश्री 'सुखमगलजी' उठे। गत सम्मेलनो स आप तोडजोड मिलाने म ख्याति प्राप्त कर चुके थे। आपकी आवश्यकता एसे ही समय हुआ करती है। आपने मुनिश्री शोभाचन्द्रजी महाराज सा० से हाथ जोड और निवदन करते हुए कहा—

"महाराज! आप तो श्रमण सघ के स्तभ ह। आप जस महात्मा के सहारे ही यह सघ जयवन्त हो रहा, ह। यदि आप जसे ही पल्ला झाडने लगेंगे तो यह नय्या कस पार लगेगा? आप बड ह, गम्भीर ह छोटो की बन्तमीजी की ओर नही देखकर भावो का विचार करिये और इस सम्मेलन को सफल बनाइये।"

"सुखमगलजी! सघ को सुदृढ बनाने के लिए हमने अपने से बना वह सब कुछ किया। हमने ऐसी आशा से सह योग सभाग और प्रयत्न किया कि हमारा श्रमण सघ आदर्श एव अनुकरणीय बन। किन्तु हमें अनुभव हो गया कि ऐसा होना कठिन ही नही असभव ह। जो जो घटनाएँ पहले नही हुई थी अथवा कम होती थी, वे हमारे सघ बनने के बाद बनी

श्रौर बढी । शिथिलता बढा । उत्सूत्र प्ररूपणा में वृद्धि हुई। स्वच्छ देता में उभार आया । इतना होते हुए भी संघ को जयवन्त मानने की भूल, मै तो नहीं करता । जब मुझसे संघ के हित में कोई काम नही हो सकता तो फिर इसमें बने रह कर बुराइयों का उत्तरदायित्व भेलू-यह मुझसे नहीं हो सकता'—मुनिश्वर श्री नामाचन्द्रजी ने कहा ।

'नहीं, महाराज ! ऐसा मत सोचिए । बडी भारी बदनामी होगी । हजारों लोग—जो यहाँ उपस्थित है उत्तेजित हो जाएँगे कदाचित जनता सत्याग्रह करने पर उतारु हो जाय। अन्य धर्मी हमारी दशा पर हँसेंगे और जिन धर्म की बड़ी भारी दुर्दशा होगी । श्राप अपने निर्णय पर फिर से विचार करें"—श्री सुखमलजी ने भावी भय का प्रदर्शन किया ।

सुखमलजी ! आपका भय प्रदर्शन व्यर्थ है । जब हम धर्म के प्रति कर्तव्यनिष्ठ रहेंगे तो हमें किसी का भय नही रहेगा । भय उन्हें होना चाहिए जो उत्सूत्र प्ररूपक है, चारित्र के प्रति उदासीन है स्वच्छन्दाचार को प्रश्रय देते हैं । जब ऐसे दुष्कार्य करने वाले भी नहीं डरते तो हमें किस बात का भय है ? जनता नहीं मानेगी अपमान करेगी"—इस भय को निकालने के बाद ही हमने अन्तिम निर्णय किया है । कृपया आप अपना काम करें । मुझ से आपकी मुराद पूरी होने की नहीं है । "

श्री सुखमलजी अपनी कोशिश में असफल होकर

लाट और साथ सयाजक श्री कशवभाई के पास आये। उन्हें परिस्थिति स अवगत किया। वे घवडाये हुए कॉन्फरन्स के वत्तमान और भूतपूर्व प्रमुखा का लेकर पुन श्री उपस्थित हुए। आगन्तुका ने भी अपना जार लगाया, किन्तु उनका भी नहीं चली तब श्री कशवभाइ न कहा–

'यदि साध्वियां वाला प्रस्ताव वापस कर दिया जाय, तब ता आपका विराध नही रहेगा न ?'

'आपको म फिर स कह देता हूँ कि मेरा विराध केवल साध्वियां के प्रश्न स ही नहीं ह। मैं इतन दिनों स देख रहा हूँ कि साधुआ का आर स अनक प्रकार का विपरीत आचरण हा रहा ह–गुप्त और प्रसिद्ध भी। यदि उन सबको राक हाकर श्रद्धा प्ररूपणा आर स्पर्शना की आगमानुसार एकता हा जाय, ता म सहर्ष सम्मिलित रहन का तय्यार हूँ–बिना पद क एक छाट साधु की भाँति। इसके विपरीत म किसी भी रूप में रहन का तय्यार नही हू।'

महाराज ! केवल आगम और एक रूपता स काम नही चलता। किसा स बरबस नियम पलवाना तो हिंसा है। इस स्वतन्त्र युग में ऐसा कदापि सम्भव-नहीं हो सकता। जरा जमान का भी तो देखिए"–काँ के प्रमुख श्री ने निवेदन किया।

'आप लागा का जमानावाद और स्वतन्त्रवाद भी साधुओं को बिगाडने में बहुत कुछ सहायक हुआ, किन्तु

बन्धुवर ! आपका स्वतन्त्र युग तो अभी आया है और हमारी स्वतन्त्रता तो सन्त से ही रही है। यदि हमारी इच्छा संयम पालन का नहीं हो तो हमें कोई नहीं रोक सकता। जिन शासन में=निर्ग्रन्थ प्रवचन में जोरजबरी का तो स्थान रहा ही नहीं है। हां विपरीत आचार विचार वाले से सम्पर्क नहीं रखना, यह हमारा कर्त्तव्य है और ऐसा तो इस जमाने में भी होता है। लौकिक संस्थाओं में भी विपरीत आचरण करने वालों के प्रति अनुशासन की कारवाई दण्ड और पृथक्-करण होता है। अतएव हम यदि भिन्न आचार विचारवालों से अपना सम्पर्क छोड़ें, तो इसमें अनुचित क्या है' ?

'मुनिवर्य ! आपके पृथक् होने से तो सारा संघ ही बिगड़ जायगा, अभी से छिन्नभिन्नता हो जायगी। फिर आपके विरुद्ध भी प्रचार होगा और आपको अनेक प्रकार की उलझनों का सामना करना पड़ेगा।'

कष्टों और आपदाओं का तो हमें भय नहीं है। हम जानते हैं कि पृथक् होने पर परिस्थिति कैसी बन सकती है। किन्तु अभी हम केवल मन्त्री पद और प्रतिनिधित्व से ही पृथक् हो रहे हैं। इस बीच में हम दूर रहते हुए अध्ययन करेंगे कि संघ का साथ उत्थान की ओर जा रहा है या उल्टा बढ़ते रास्ते पर है। यदि वह उत्थान की ओर बढ़ता रहा, तो हमें पृथक् होने की आवश्यकता नहीं रहेगा, अन्यथा सर्वथा पृथक् होना पड़ेगा।''

उपरोक्त दृढ विचारों के आगे निष्फल होकर मयाजकजो वापस लौटे। दूसरी ओर साध्वियों का प्रस्ताव वापस लौटाने का प्रयत्न हो रहा था, किन्तु उधर भी प्रस्तावक और उनके साथी अपनी बात पर डटे हुए थे। प्रस्ताव पर मत लिये गये और बहुमत से प्रस्ताव पास किया गया। इससे सुधारक वर्ग प्रसन्न हुआ। कुछ मुनिवरों के चेहरों पर उदासी के भाव भी थे। कुछ साधारण कार्य होने के बाद प्रधान मन्त्रीजी महाराज का उपसंहारात्मक भाषण, इस प्रकार हुआ।

'वन्दनीय अध्यक्ष महोदय एवं प्रतिनिधि मुनिवरो!

इस अधिवेशन का प्रारम्भ जैसा उत्साहप्रद था वैसी समाप्ति नहीं हुई। आज हम एक प्रकार की उदासी के साथ यह कार्य पूर्ण कर रहे हैं। हम अपने कर्मठ और प्रतिभाशाली स्तंभ से आज पृथक् हो रहे हैं। मैंने खूब ने अनुभव किया कि हमारे मुनियों में से अनेकों की कथनी और करणी, अपनी संस्कृति के अनुकूल नहीं रही। विपरीत प्रचार और अशिष्टाचार बढ रहा है। उत्तम मर्यादा को बन्धन मानकर तोड़ने में अपनी सुधारकता मानी जा रही है। छद्मवाद की छोटीसी छूट कितनी बढ़ी। लेखक साधुओं की लेखनी से ऐसे ऐसे लेख भी निकले कि जिससे उन्हें गृहस्थ जैसे विचारवाला मानना पड़ता है। कुछ मुनिवर स्थानकों के निर्माण में लगे हैं, तो कुछ गुरुस्मारक बनवाने का प्रयत्न कर रहे हैं। सावद्य प्रवृत्ति की ओर बढ़ने में बहुतों को हिचकिचाहट भी नहीं होती। धर्म और समाज के नाम पर खूब प्रेरक बनकर हजारों

गृहस्थों के बडे बडे हंगामें जमा कर अपना मानपान बढ़ा रह ह और किसी किसा का मवधम सम्मेलन स सभी धर्मों का समान बताने की धुन सवार हुई ह। समाचार पत्रा में प्रकाशित हान वाले श्रमणा क लेखा को पढते ह, ता मालूम हाता ह कि उन्हाने निग्रन्थ धम का खतम करन पर ही कमर कस ली ह। आगमा के मूल में परिवत्तन की महान दुघटना भी हमार सगठन के चलन हो हुई ह×। इस प्रकार का विशृंखलता जिन धम और निग्रन्थ सस्कृति के लिए कदापि अनुमादनीय नही ह। इस सम्मलन में इस विषय पर पूण रूप स विचार होकर पतन का रोकना था। किन्तु एसा नही हा सका। यदि अब भी हमन स्थिति का सभाला और बढत हुए विकार का राक कर सस्कारों का सिंचन किया, तो हमारा सगठन आदर्श बन सकेगा और हमस अलग रहे और बिछुड हुए अग भा हमस प्रम पूवक, बिना किसी प्रयत्न के आ मिलेग।"

'म मानता हू कि परिषद क अनेक सदस्य मेरे इन विचारा का अनुमोदन नहा करग, किन्तु सही स्थिति ता बतानी ही पडता ह। ऐसा नहा हा कि हमारा उदासीनता फिर किन्ही उत्तम सता का अपन में से गँवाकर अपने सगठन का बिगाड दें।"

"म उन सुधारक मनावृत्ति के युवक सतों से भी निवे-

× और निशीथचूर्णि का प्रकाशन तो निग्रन्थ सस्कृति के मूल में कुठाराघात करने वाला हुआ ह।

एन करता हूं कि व अपने ज्ञान का हाथ में अंकुश में रखें। अशिष्ट एवं असमितिहीन वाणी का त्याग दें। उनका इच्छा जमाने के अनुसार चलने का है किन्तु ऐसा होना असम्भव है। जब हम अपने को निग्रन्थ मानते हैं, तो हमें सम्पर्ण जमाने की ओर से मुंह मोड़कर निग्रन्थनाथ महावीर के सिद्धांतों पर ही दृष्टि रखनी पड़ेगी। अन्यथा संगठन में विघटन होना अवश्यम्भावी होगा।"

प्रधान म श्रीजी महाराज के उपसंहारात्मक भाषण के पश्चात सम्मेलन की कारवाई समाप्त हुई।

स्त्री प्रधान धर्म

महिलापुर में आज साधु सम्मेलन का विराट अधिवेशन हो रहा है। इस अधिवेशन में साध्वियाँ भी प्रतिनिधित्व करेंगी और आचार्यादि पदाधिकारियों का नया चुनाव होगा। इसलिए कुतूहलवश साधु साध्वी भी अधिक आये और उपासक उपासिकाओं का भीड़ भी पूर्व सम्मेलनों की अपेक्षा अधिक ही रहा। प्रतिनिधियों में साधु की अपेक्षा साध्वियों की संख्या अधिक था। सम्मेलन की कारवाई के प्रारम्भ में ही श्री महाम श्रीजी महाराज ने कहा–

'परिस्थिति पलट चुकी है। पहले की अपेक्षा प्रतिनिधित्व बहुत बढ़ चुका है। अतएव समस्त प्रतिनिधियों को

राय से नया चुनाव हो जाना आवश्यक है। इसलिए मैं अपने मंत्री मण्डल का त्याग पत्र उपस्थित करता हूँ।" आचार्यश्री ने कहा-"मैं भी नया चुनाव होने पर अपना पद निर्वाचित प्रधान को समर्पित कर दूंगा।"

चुनाव प्रारंभ होते पर मंत्रियों में साधुओं की अपेक्षा साध्वियें अधिक आई। कुल तेरह मन्त्रियों में चार साधु और नौ साध्वियें आईं। प्राचीन मन्त्रियों में से केवल एक ही आये। शेष मंत्रियों में से किसी ने भी पद स्वीकार करने में अरुचि बतलाई। श्री नवीनकुमारजी, सुरतचन्दजी और प्रमोदकुमारजी खड़े हुए और चुन लिये गये। आचार्य पद का प्रश्न उपस्थित होने पर साध्वियों की ओर से श्री कांतिकुमारीजी का नाम उपस्थित हुआ। साधुओं की ओर से वर्तमान आचार्यश्री का नाम उपस्थित हो रहा था कि तत्काल दीर्घदृष्टि से बीच ही में रोक लिया गया। यह समझा गया कि साध्वियों के सामने साधु का विजयी होना अशक्य है। कुछ साधुओं का झुकाव भी साध्वियों की ओर था। अन्त श्री कांतिकुमारीजी का भारी हर्षध्वनि के बीच निर्विरोध आचार्य पद पर चुन लिया गया। उन्हें आचार्यश्री के पद पर बिठाने के बाद, आचार्यश्री की चद्दर प्रदान की गई। इसके बाद उपाचार्य का प्रश्न सामने आया। साध्वियों की ओर से उदारता दिखलाई गई कि यदि कोई श्रमण, इस पद पर आरूढ़ होना चाहें तो हमारी ओर से किसी को खड़ा नहीं किया जाकर उन्हें चुन लिया जायगा। यदि पूर्व के पदाधिकारियों में से कोई उम्मीदवार

होगा तो और भी अच्छा होगा। उनके अनुभव का लाभ भी प्राप्त हो सकेगा। किन्तु पूर्व के पदाधिकारियों में से कोई भी इस पद का इच्छुक नहीं मिला। यह स्थिति देखकर श्रीनवीन कुमारजी, श्रमण वृन्द की ओर देखकर व्यंग करते हुए बोले–

"साध्वों की अयोग्यता में रहकर कार्य करते शर्म लग रही होगी? हाँ वंश परम्परा से जिन पर शासन करते आये, उन शासितों का शासन ये कैसे पसन्द करेंगे?"

श्रीनवीनकुमारजी के इस वाक्‌प्रहार को बहुत से सन्तों ने तो शान्ति से सहन करते हुए मुस्कान पूर्वक टाल दिया, किन्तु मुनिश्री केसरीमलजी सहन नहीं कर सके। उन्होंने उठते हुए कहा– देखता हूं कि अब ऐसी परिषद में बैठना भी कर्म बन्धन का कारण हो जायगा।' वे चलने लगे। उनका अनुकरण कुछ दूसरे सन्त भी कर रहे थे। यह देखकर मुनिश्री देवचन्दजी ने कहा–

'मुनिवरो! चलना तो हमें भी है, पर इस तमाशे को तो थोड़ा देखले, फिर हम भी चलेंगे। इसलिए थोड़ी देर आप बैठ जायें तो ठीक रहेगा।" उठे हुए मुनिवर बैठ गये।

बाद में मुनिश्री देवचन्दजी ने फिर कहा–

'क्या कोई मुनिवर उपाचार्य पद चाहता है?' किसी के उत्सुक नहीं होने पर कह दिया कि "मुनिवरों में से कोई भी इस पद को नहीं चाहता है।' श्री कीर्तिकुमारीजी ने भूत-पूर्व आचार्य उपाचार्य, प्रधान मन्त्रीजी आदि को भी खास

तौर पर पूछा, किन्तु उन्होंने भी अनिच्छा प्रदर्शित की, तब अध्यक्षा ने कहा कि "हम मुनिवरों का सहयोग और उनके अनुभव का लाभ लेना चाहती है। इसलिए यह स्थान उन्हें स्वीकार करना ही पड़ेगा। हम उनके लिए अभी यह स्थान रिक्त ही रखेंगे"।

मन्त्रियों में प्रधान मन्त्री पद के लिए सती श्रीचन्द्र-कान्ताजी और श्रीनवीनकुमारजी के नाम प्रस्तुत हुए। श्रीनवीनकुमारजी ने अपना नाम वापिस ले लिया और चन्द्र-कान्ताजी निर्विरोध चुन ली गई। श्री नवीनकुमारजी महामन्त्री बने। विभागों का बटवारा भी हो गया। श्रीसूर्यकान्ताजी ने सुझाव रक्खा–

"अब तक संघ का नाम श्रमण संघ' था, और उस समय यह नाम रहना उचित ही था, क्योंकि उस समय संघ में श्रमण की ही प्रधानता थी। अब वह स्थिति नहीं रही है। अब प्रधानता श्रमणी की हो गई है। इसलिए इस संघ का नाम 'श्रमणी संघ' रहना चाहिए। इस पर श्रीचन्द्रकान्ताजी ने संशोधन करते हुए कहा कि नहीं उस समय प्रतिनिधियों में श्रमणियों को स्थान नहीं था इसलिए 'श्रमण संघ' नाम उप-युक्त था, किन्तु अभी तो दोनों शामिल हैं। अतएव 'श्रमण श्रमणी संघ' नाम रखना उचित होगा'।

श्री मोहिनकुमारीजी–

"क्योंकि इस संघ में श्रमणी की संख्या अधिक है, तथा

आचार्यादि महत्त्वपूर्ण पदों पर श्रमणी प्रतिष्ठित हुई हैं। इसलिए पहले श्रमण नहीं, किन्तु पहले 'श्रमणी' और बाद में 'श्रमण' शब्द रखा जाकर 'श्री वर्धमान श्रमणी श्रमण संघ' नाम रखा जाय"।

मुनि श्री देवचन्द्रजी ने कहा—' यदि यही बात है तो वर्धमान नाम भी आप को नहीं रखना चाहिए क्योंकि इससे भी पुरुष की ही प्रधानता सिद्ध होगी। यदि पुरुष को गिराना ही है, तो वर्धमान नाम को निकाल दीजिए।"

'हां ठीक तो है अपने को वर्धमान की जगह मल्लिनाथ का नाम रख लेना चाहिए'—श्री सूयकांताजी ने कहा—

'पर शासन तो वर्धमान स्वामी का है'—श्रीचन्द्रकांताजी ने शंका उठाई। 'श्री स्थानकवासी जैन श्रमणी श्रमण संघ' नाम रखना ठीक होगा—अध्यक्षा ने कहा और मत लेने पर अधिकांश श्रमणों के तटस्थ रहते हुए बहुमत से पास हो गया। इस प्रस्ताव के पास होते ही मुनि श्री देवचन्द्रजी ने कहा 'यह भी ठहराव कर लो कि "सूत्रों में भिक्खू वा भिक्खुणी वा' और ऐसे ही निर्ग्रन्थ आदि शब्द हैं उन्हें भी आगे पीछे कर दिया जाय'। अध्यक्षा ने इस व्यंग को उड़ाते हुए कहा— 'इस पर फिर कभी विचार होगा"।

इसके बाद प्रमुख स्थान से निम्न प्रस्ताव पेश हुआ। "अब तक सभी श्रमणियें, श्रमण को ही नमन करती

हम भी तुम्हारे साथ हो आते है। हमारा सम्बन्ध भी इस संघ से खत्म हो रहा है। चलो मुनिवरो ! जिन्हें इस सम्मेलन में शरीक नही रहना हो वे सब अपना सम्बन्ध छोड कर चले चलो। हमारा निवाह इस संघ में नहीं हो सकता। हमें क्या करना है-ऐसे संघो और संगठनों में। हम अपने ही संगठन से यथाशक्ति अपना आत्म कल्याण साध सकेंगे। जमाने के आगे झुक जाने से ही आज हमारी यह दशा हो गई। हमें दूसरों का मुहताज नहीं रहकर अपनी ही शक्ति के बलपर आत्म कल्याण साधना चाहिए। यदि हममें चारित्र और तप का बल होगा, तो हमें किसी की परवाह नहीं होगी। स्वामी श्री शोभाचन्द्रजी और धर्मचन्द्रजी का आदर्श अपनाओ। वे गत सम्मेलन में पृथक हुए, तो उन्हें आज यह दिन नहीं देखना पडा। जब वे भिन्न रहकर चारित्र पाल सकते है तो हम क्या नहीं पाल सकेंगे। क्या आवश्यकता आ पडी है हमें अपने पुरातन नियमों को तोडकर जमाने के गुलाम बनने की।

'बोलो भगवान महावीर की जय। श्रमण महर्षियों की जय। निर्ग्रन्थ धर्म की जय।'

सुधारक वर्ग के साधुओं के अतिरिक्त सभी मुनि उठकर चल दिये। इधर सभा का काम भी कल तक के लिए स्थगित करके सभी सभा भवन छोडकर चल दिये।

समाप्त

संघ के अगले प्रकाशन

१. आत्मसाधना संग्रह
२ उत्तराध्ययन तृतीयावृत्ति
३. औपपातिक सूत्र
४. भगवती सूत्र
५ दशवैकालिक

संघ की ओर से श्री जिनवाणी का प्रकाशन क्रमश
ादर समाज की सेवा में उपस्थित होता रहेगा।

अनागत की झांकी

स्त्री
प्र
धा
न
ध
र्म